भारतीय संविधान की विशेषताएँ

1.व्यक्ति की स्वतंत्रता

संविधान के बारे में गौर करने वाली पहली बात है कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता क लिए प्रतिबद्ध है। यह प्रतिबद्धता लगभग एक सदी तक निरंतर चली बौद्धिक और राजनीतिक गतिविधियों का परिणाम है। 19वीं सदी क शुरुआती समय में ही राममोहन राय ने प्रेस की आजादी की काट-छाँट का विरोध किया था। अंग्रेजी सरकार प्रेस की आजादी पर प्रतिबंध लगा रही थी। राममोहन राय का तर्क था कि जो राज्य व्यक्ति की जरूरतों का ख्याल रखता है, उसे चाहिए कि वह व्यक्ति को अपनी जरूरतों की अभिव्यक्ति का साधन प्रदान करे। इसलिए, राज्य के लिए जरूरी है कि वह प्रकाशन की असीमित आजादी प्रदान करे। पूरे ब्रिटिश-शासन के दौरान भारतीय प्रेस की आजादी की माँग निरंतर उठाते रहे। आश्चर्य नहीं कि आज अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारे संविधान का अभिन्न अंग है। इसी तरह, मनमानी गिरफ्तारी के विरुद्ध हमें स्वतंत्रता प्रदान की गई है। आखिर कुख्यात रौलेट एक्ट ने हमारी इसी स्वतंत्रता के अपहरण का प्रयास किया था और राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम ने इसके विरुद्ध जमकर लोहा लिया। इसके अतिरिक्त अन्य वैयक्तिक स्वतंत्रताएँ मसलन अंतरात्मा का अधिकार उदारवादी विचारधारा का अभिन्न हिस्सा है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान का चरित्र मजबूत उदारवादी बुनियाद पर प्रतिष्ठित है। मौलिक अधिकारों से संबंधित अध्याय में हम देख चुके हैं कि भारतीय संविधान व्यक्ति की स्वतंत्रता को कितना महत्त्व देता है। संविधान को अंगीकार करने के चालीस वर्ष पहले भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रत्येक प्रस्ताव, योजना, विधेयक और रिपोर्ट में व्यक्ति की स्वतंत्रता की चर्चा रहती थी। इसे यों ही लिखने भर के लिए नहीं लिखा जाता था बल्कि इसे एक ऐसा मूल्य माना जाता था जिस पर समझौता नहीं किया जा सकता।

2. सामाजिक न्याय

हमारा संविधान सामाजिक न्याय से जुड़ा है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण का प्रावधान इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। संविधान निर्माताओं का विश्वास था कि मात्र समता का अधिकार दे देना इन वर्गों के साथ सदियों से हो रहे अन्याय से मुक्ति के लिए अथवा इनके मताधिकार को वास्तविक अर्थ देने के लिए काफी नहीं है। इन वर्गों के हितों को बढ़ावा देने के लिए विशेष संवैधानिक उपायों की जरूरत थी। इस कारण संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति और अनसूचित जनजाति के हितों की रक्षा के लिए बहुत से विशेष उपाय किए। इसका एक उदाहरण है अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए विधायिका में सीटों का आरक्षण।

संविधान के विशेष प्रावधानों के कारण ही सरकारी नौकरियों में इन वर्गों को आरक्षण देना संभव हो सका।

3. विविधता और अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्मान

संविधान का उदारवाद सामुदायिक जीवन-मूल्यों का पक्षधर है। भारतीय संविधान समुदायों के बीच बराबरी के रिश्ते को बढ़ावा देता है। हमारे देश में ऐसा करना आसान नहीं था क्योंकि समुदायों के बीच अकसर बराबरी का रिश्ता नहीं होता। समुदायों के बीच एक-दूसरे के साथ अकसर ऊँच-नीच का रिश्ता होता है जैसा कि हम जाति के मामले में देखते हैं। दूसरे, जब समुदाय एक-दूसरे को बराबरी का मानते हैं तब बहुधा प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं जैसा कि हम धार्मिक समुदायों के मामले में देखत हैं। संविधान निर्माताओं के सामन इस बात की कठिन चुनौती थी कि ऊँच-नीच अथवा गहरी प्रतिद्वंद्विता की मौजूदा स्थिति के बीच समुदायों में बराबरी का रिश्ता कैसे कायम किया जाए कोई समुदाय दूसरे पर प्रभुत्व न जमाए इस बात को सुनिश्चित करना जरूरो था। इसी कारण हमारे संविधान के लिए समुदाय आधारित अधिकारों को मान्यता देना जरूरी हो गया। ऐसे ही अधिकारों में एक है धामिक समुदाय का अपनी शिक्षा संस्था स्थापित करने और चलाने का अधिकार। एसी संस्थाओं को सरकार धन दे सकती है। इस प्रावधान से पता चलता है कि भारतीय संविधान धर्म को सिर्फ व्यक्ति का निजी मामला नहीं मानता।

4. धर्मनिरपेक्षता

धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को 'निजी मामला' के रूप में स्वीकार करते हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को आधिकारिकअथवा सार्वजनिक मान्यता नहीं प्रदान करते। मुख्यधारा की पश्चिमी धारणा में व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति की नागरिकता से संबंधित अधिकारों की रक्षा के लिए धर्मनिरपेक्षता को धर्म और राज्य के पारस्परिक निषेध के रूप में देखा गया है। राज्य के लिए जरूरी है कि वह धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करे। ठीक इसी तरह धर्म को चाहिए कि वह राज्य की नीति में दखल न दे और न ही राज्य-संचालन को प्रभावित करे। दूसरे शब्दों में, पारस्परिक-निषेध का अर्थ है कि धर्म और राज्य परस्पर एकदम अलग होने चाहिए।

भारत में स्थितियाँ अलग थीं और इन स्थितियों से उत्पन्न चुनौती से निबटने के लिए संविधान निर्माताओं ने धर्मनिरपेक्षता की वैकल्पिक धारणा का विकास किया। संविधान निर्माता धर्मनिरपेक्षता के पश्चिमी मॉडल से दो रूपों में अलग हुए और इसके दो अलग-अलग कारण थे।

धार्मिक समूहों के अधिकार

पहली बात, जैसा कि बताया जा चुका है, संविधान निर्माता विभिन्न समुदायों के बीच बराबरी के रिश्ते को उतना ही जरूरी मानते थे जितना विभिन्न व्यक्तियों के बीच बराबरी को। इसका कारण

यह कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान का भाव सीधे-सीधे उसके समुदाय की हैसियत पर निभर करता है। यदि एक समुदाय दूसरे के प्रभुत्व में हो, तो उसके सदस्य भी कम स्वतंत्र होंगे। दूसरी तरफ, अगर दो समुदायों के बीच बराबरी का संबंध हो, एक का दूसरे पर प्रभुत्व न हो, तो इन समुदायों के सदस्य आत्म-सम्मान और आजादी के भाव से भरे होंगे। इसलिए, भारतीय संविधान सभी धार्मिक समुदायों को शिक्षा-संस्थान स्थापित करने और चलाने का अधिकार प्रदान करता है। भारत में धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति और समुदाय दोनों की धार्मिक स्वतंत्रता होता है।

राज्य का हस्तक्षेप करने का अधिकार

दूसरी बात, धर्म और राज्य के अलगाव का अर्थ भारत में पारस्परिक-निषेध नहीं हो सकता। ऐसा इसलिए कि धर्म से अनुमोदित रिवाज मसलन छुआछूत व्यक्ति को उसकी बुनियादी गरिमा और आत्म-सम्मान से वंचित करते हैं। इन रिवाजों की पैठ इतनी गहरी और व्यापक थी कि राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप क बिना इनके खात्मे की उम्मीद नहीं थी। राज्य को धर्म के अंदरूनी मामले में हस्तक्षेप करना ही पड़ा। ऐसे हस्तक्षेप हमेशा नकारात्मक नहीं होते। राज्य ऐसे में धार्मिक समुदायों की मदद भी कर सकता है। मिसाल के तौर पर धार्मिक संगठन द्वारा चलाए जा रहे शिक्षा-संस्थान को वह धन दे सकता है। इस तरह, राज्य धार्मिक समुदायों की मदद भी कर सकता है और बाधा भी पहुँचा सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि राज्य के किन कदमों से स्वतंत्रता और समता जैसे मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। भारत में धर्म और राज्य के अलगाव का अर्थ पारस्परिक-निषेध नहीं बल्कि राज्य की धर्म से सिद्धांतगत दूरी है। यह एक जटिल विचार है। इससे राज्य को सभी धर्मों से दूरी रखने की छूट मिलती है ताकि वह अवसर के अनुकूल धर्म के मामलों में हस्तक्षेप कर सके अथवा ऐसे मामलों में दखल देने से बचा रहे। यह इस बात पर निर्भर है कि इन दोनों में से किस कदम से स्वतंत्रता, समता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिलता है।

5. सार्वभौम मताधिकार

सार्वभौम मताधिकार के प्रति वचनबद्धता अपने आप में कोई कम बड़ी उपलब्धि नहीं, खासतौर पर उस स्थिति में जब माना जाता हो कि भारत में परंपरागत आपसी ऊँच-नीच का व्यवहार बहुत मजबूत है और उसे समाप्त कर पाना लगभग असंभव है। सार्वभौम मताधिकार को अपनाना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण कहा जाएगा क्योंकि पश्चिम के उन देशों में भी जहाँ लोकतंत्र की जड़ स्थायी रूप से जम चुकी थी, कामगार तबके और महिलाओं को मतदान का अधिकार काफी देर से दिया गया था। एक बार राष्ट्र के विचार ने समाज के अभिजात्य तबके में जगह बना ली, तो इसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक स्व-शासन का विचार भी पनपा। इस प्रकार, भारतीय राष्ट्रवाद की धारणा में हमेशा एक ऐसी राजव्यवस्था को बात मौजूद रही जो समाज के प्रत्येक सदस्य की इच्छा

पर आधारित हो। सार्वभौम मताधिकार का विचार भारतीय राष्ट्रवाद के बीज विचारों में एक है। भारत के लिए अनौपचारिक रूप से संविधान तैयार करने का पहला प्रयास 'कंस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया बिल' के नाम से सन् 1895 में हुआ था। इस पहले प्रयास में भी इसके लेखक ने घोषणा की थी कि प्रत्येक नागरिक अर्थात् भारत में जन्मे व्यक्ति को देश के मामलों में भाग लेने तथा सरकारी पद हासिल करने का हक है। मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट (1928 ई.) में नागरिकता की इसी धारणा की पुष्टि करते हुए कहा गया कि 24 वर्ष की आयु के हर व्यक्ति को (स्त्री हो या पुरुष) लोकसभा के लिए मतदान करने का अधिकार होगा। इस रिपोर्ट में ऐसे हर व्यक्ति को नागरिक का दर्जा प्रदान किया गया जो राष्ट्रमंडल की भू-सीमा में पैदा हुआ है और जिसने किसी अन्य राष्ट्र की नागरिकता नहीं ग्रहण की है अथवा जिसके पिता इस भू-सीमा में जन्म हों या बस गए हों। इस तरह, शुरुआती दौर से ही सार्वभौम मताधिकार को अत्यंत महत्त्वपूर्ण और वैधानिक साधन माना गया जिसके सहारे राष्ट्र की जनता अपनी इच्छा का इजहार करती है।

6. संघवाद

जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर से संबंधित अनुच्छेदों को जगह देकर भारतीय संविधान ने 'असमतोल संघवाद' जैसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा को अपनाया। संविधान में एक मजबूत केंद्रीय सरकार की बात मानी गई है। संविधान का झुकाव केंद्र सरकार की मजबूती की तरफ तो है लेकिन इसके बावजूद भारतीय संघ की विभिन्न इकाइयों की कानूनी हैसियत और विशेषाधिकार में महत्त्वपूर्ण अंतर है। अमेरिकी संघवाद की संवैधानिक बनावट समतोल है लेकिन भारतीय संघवाद संवैधानिक रूप से असमतोल है। कुछ एक इकाइयों की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए संविधान की रचना में बराबर इस बात का ख्याल रखा गया कि इन इकाइयों के साथ संबंध अनूठे रहें अथवा इन्हें विशेष दर्जा प्रदान किया जाय। मसलन, भारतीय संघ में जम्मू-कश्मीर का विलय इस आधार पर किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत इस प्रदेश की स्वायत्तता की रक्षा की जाएगी। यह एकमात्र प्रदेश है जिसका अपना संविधान है। ठीक इसी तरह अनुच्छेद 371 ये के तहत पूर्वोत्तर के प्रदेश नगालैंड को विशेष दर्जा प्रदान किया गया। यह अनुच्छेद न सिर्फ नगालैंड में पहले से लागू नियमों को मान्यता प्रदान करता है बल्कि आप्रवास पर रोक लगाकर स्थानीय पहचान की रक्षा भी करता है। बहुत से अन्य प्रदेशों को भी ऐसे विशेष प्रावधानों का लाभ मिला है। भारतीय संविधान के अनुसार विभिन्न प्रदेशों के साथ इस असमान बरताव में कोई बुराई नहीं है। हालाँकि संविधान में मूल रूप से यह बात नहीं कही गई है परंतु आज भारत एक बहु-भाषिक संघ है। हर बड़े भाषाई समूह की राजनीतिक मान्यता है और इन्हें परस्पर बराबरी का दर्जा प्राप्त है। इस तरह भारत के लोकतांत्रिक और भाषाई संघवाद ने सांस्कृतिक पहचान के दावे को एकता के

दावे के साथ जोड़ने मं सफलता पाई है। भारत में एक भरा-पूरा राजनीतिक मैदान मौजूद है जिसमें परस्पर प्रतिस्पर्धी बहुविध अस्मिताओं को राजनीतिक दावेदारी करने की छूट है।